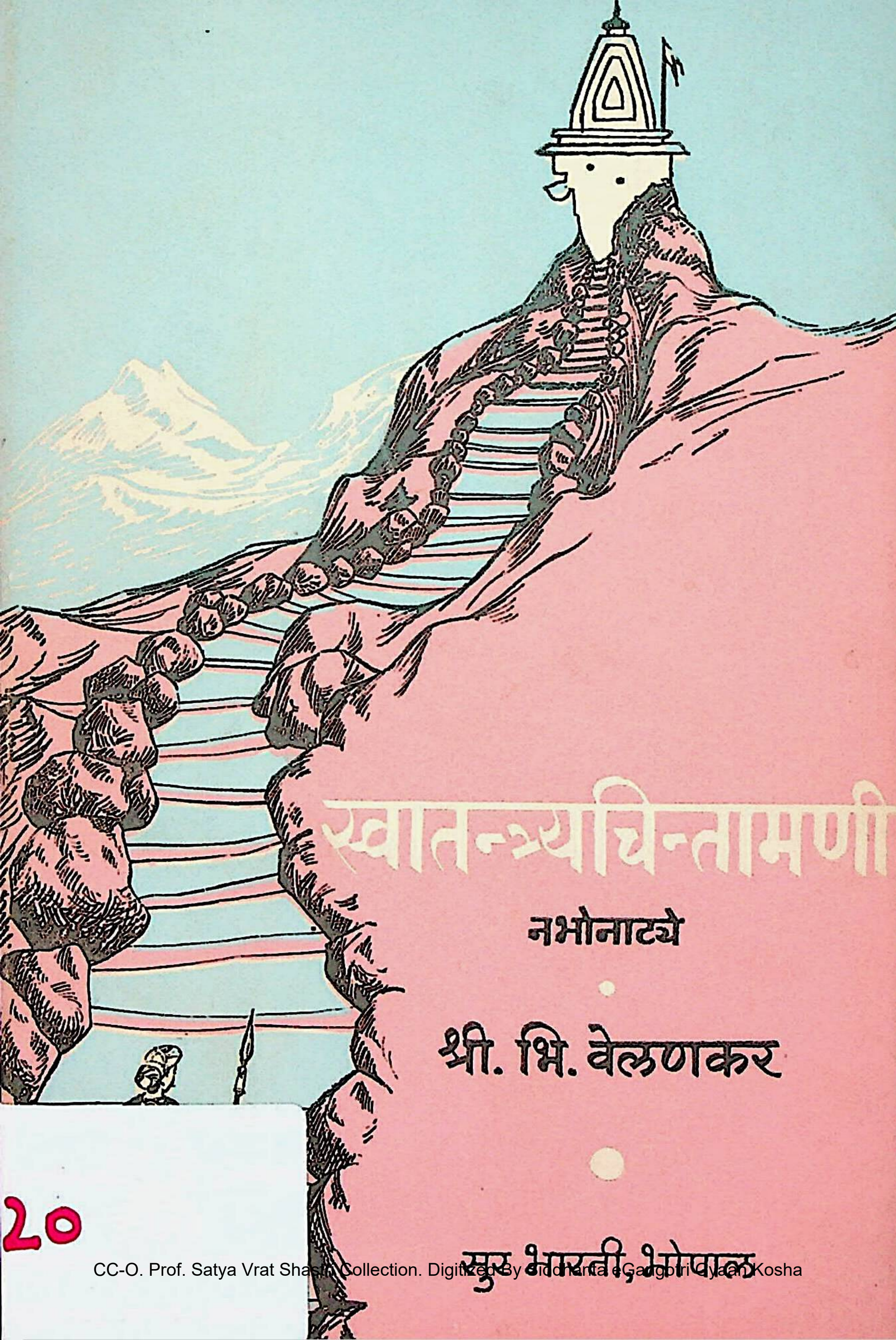

स्वातन्त्र्यचिन्तामणी
नभोनाट्ये
श्री. भि. वेलणकर
सुर भारती, भोपाल
20

वेलणकर–वाङ्मय

(प्रकाशित)

संस्कृत

१ विष्णुवर्धापनं
२ गुरुवर्धापनं
३ जयमङ्गला
४ जीवनसागरः
५ संगीत-सौभद्रं
६ कालिदासचरितं
*७ कालिन्दी
*८ कैलासकम्पः
*९ स्वातन्त्र्यलक्ष्मीः
+१० हुतात्मा दधीचिः
+११ राज्ञी दुर्गावती
१२ जवाहरचिन्तनं
१३ विरहलहरी
१४ मेघदूतोत्तरं
×१५ स्वातन्त्र्यचिन्ता
×१६ स्वातन्त्र्यमणिः

(* रणश्रीरङ्गग्रन्थे
+ प्राणाहुतीग्रन्थे
× स्वातन्त्र्यचिन्तामणिग्रन्थे)

English

Similes in Rigveda

३१-७-१९६६

डॉ. सत्य शास्त्रीणे

[illegible]।

—[illegible]

३.१.७१



स्वातन्त्र्य-चिन्तामणी

[नभोनाट्यद्वयं]

TWO RADIO PLAYS

श्री भि. वेलणकर



भोपाल

मूल्य रु० १·५०

वेष्टनं : जयस्वाल

मुद्रक:
चन्द्रा प्रिन्टर्स,
भोपाल

प्रसिद्धि : १९६९

प्रथमावृत्तिः

प्रकाशका:
सुरभारती, भोपाल

श्री मोहनलाल सुखाड़िया
मुख्य मंत्री, राजस्थान
द्वारा पुरस्कार

राजस्थान
सरकार

१८/१४/ मु. म का /६८
मुख्य मंत्री
जयपुर
दिसम्बर १-१०-६८

श्री. भि. वेलणकर संस्कृत साहित्य के प्रेमियों के लिए अपरिचित नहीं हैं। उन्होंने संस्कृत में नाटक एवं काव्य की अनेक पुस्तकें लिखी हैं तथा उनकी रचनाओं की संस्कृत के प्रमुख विद्वानों द्वारा प्रशंसा की गई है।

श्री वेलणकर जी ने प्रस्तुत ग्रन्थ में दो नाटक प्रस्तुत किये हैं जिनके कथानक महाराणा प्रताप तथा

महाराज छत्रसाल के यशस्वी जीवन से लिये गये हैं। महान देशभक्त महाराणा प्रताप तथा महाराज छत्रसाल के जीवन–वृत्त प्रत्येक प्रसंग नई पीढ़ी के लिए प्रकाश-पुंज है। ऐसे ही प्रसंगों का विवरण श्री वेलणकर ने अपनी इस पुस्तक में किया है। इन महापुरुषों के ये प्रसंग निश्चय ही युवकों और किशोरों के लिए प्रेरणाप्रद सिद्ध होंगे।

श्री वेलणकर जी तथा 'सुरभारती' जिसके तत्वावधान में यह पुस्तक प्रकाशित की जा रही है— इसके लिए बधाई के पात्र हैं। मैं प्रकाशन के सफलता की कामना करता हूं।

मोहनलाल सुखाड़िया

श्री वीरेन्द्र कुमार सखलेचा
उप मुख्य मंत्री मध्यप्रदेश

भोपाल,
दिनाँक १४-११-६८

श्री वेलणकरजी द्वारा संस्कृत भाषा में लिखी गई नाट्यकृति स्तुत्य प्रयास है। विशेषरूप से बाल एवं युवक वर्ग को उक्त कृतियां अतीव लाभप्रद सिद्ध होंगी। संस्कृत में अतीव श्रेष्ठ साहित्य भंडार हमारे देश में विद्यमान होते हुए भी आधुनिक समय संस्कृत को प्रचलित भाषा न मानकर बहुत ही कम साहित्यिक संस्कृत में रचनाएं लिख रहे हैं। ऐसे समय में श्री वेलणकरजी ने संस्कृत में ग्रंथ लिखकर बहुत ही

सराहनीय कार्य किया है। भारतीय एकता संस्कृति एवं परम्पराओं को दृढ़ करने हेतु संस्कृत के महत्व को ठीक प्रकार से स्थापित रखना अतीव आवश्यक है। इसी प्रकार प्रस्तुत नाट्यकृति में देश प्रेम राष्ट्रप्रेम आदि श्रेष्ठ भावों को महाराणा प्रताप व छत्रसाल के आदर्श चरित्रों को स्फूर्तिदायक रूप में प्रस्तुत किया है। यह बालक, बालिकाओं एवं युवकों में देशप्रेम की श्रेष्ठ प्रेरणा देने में सहायक होंगे। श्री वेलणकर द्वारा मातृभाषा संस्कृत में लिखा गया साहित्य एक नई दिशा में सराहनीय प्रयास है।

वीरेन्द्रकुमार सखलेचा

प्रस्तावना

धर्मपालसिंह गुप्त
शिक्षा मंत्री, मध्यप्रदेश

भोपाल
दिनाँक ३० अक्तूबर, १९६८

श्री वेलणकर की संस्कृत रचना स्वातन्त्र्य चिन्तामणि को देखकर पाठक के मन में सहज ही यह कौतूहल उत्पन्न हो सकता है कि स्वयं अंग्रेजी और मराठी के सुविज्ञ होते हुए भी लेखक ने संस्कृत भाषा को अपना माध्यम क्यों चुना है। वास्तव में इस प्रश्न का उत्तर इस रचना में ही निहित है। संस्कृत में इस रचना को प्रस्तुत करने की तह में लेखक के हृदय में यह सुदृढ़ भावना काम करती है कि संस्कृत भाषा भारत की नहीं विश्व की संपत्ति है और इस देश की सभ्यता और संस्कृति से इसका जो अटूट संबंध रहा है वह सदा बना रहना चाहिये।

इतिहास के सूक्ष्म अध्ययन करने वालों का यह मत है कि किसी भी देश के सर्वाङ्गीण उन्नति में भाषा एक प्रभावशाली माध्यम का काम करती है और निश्चय ही भारत जैसे विशाल तथा विविधतापूर्ण देश की उन्नति और विकास में संस्कृत भाषा का अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इस देश के मनीषियों ने शताब्दियों के चिन्तन और मनन के द्वारा जो ज्ञानराशि अर्जित की है उसके प्रभाव को संस्कृत भाषा ने निरन्तर कायम रखा है।

राष्ट्र भाषा के प्रश्न को लेकर देश में विवाद उपस्थित करने वाले लोगों के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि वे भारत के जन जीवन को संस्कृत भाषा के योगदान और उसके महत्व पर गंभीरता पूर्वक विचार करें। संस्कृत भाषा ने जिस प्रकार देश की विभिन्न भाषाओं के बीच जोड़ने वाली कड़ी का और सहज सुलभ अक्षय ज्ञानराशि के भंडार का काम किया है उसका उदाहरण मिलता कठिन है। स्थानीय परिस्थितियों और व्यवहारिकता की दृष्टि से किसी न किसी रूप में राष्ट्रभाषा हिन्दी को भी वही काम करना है। किसी भी रूप में हिन्दी अन्य भाषाओं के विकास और विस्तार में बाधक नहीं हो सकती। ध्यानपूर्वक देखने पर विदित होगा कि इसका श्रेय वस्तुतः संस्कृत भाषा को है जिसने अपना समस्त शब्द भंडार और विपुल ज्ञान राशि भारतीय भाषाओं को साझी सम्पत्ति के रूप में विरासत में प्रदान की है।

श्री वेलणकर की इस कृति में भावनाओं को अत्यन्त स्वाभाविक रूप से अभिव्यक्ति मिली है। इसका कारण यह है कि श्री वेलणकर केवल संस्कृत के ही लेखक नहीं हैं, अपितु मराठी में भी उन्होंने उपयोगी रचनाएं प्रस्तुत की हैं। उनके ना:क मराठी और संस्कृत दोनों भाषाओं में खेले जाते रहे हैं और उनमें अपने दर्शकों को प्रभावित करने की सहज तथा स्वाभाविक क्षमता है इस कृति से उनकी यह विदित होता है कि संस्कृत का आधुनिक साहित्य युग की अपेक्षाओं के अनुकूल है और आधुनिक विचार-धारा से विच्छिन्न नहीं है।

पराधीनता के दिनों में भारतीय सभ्यता और सँस्कृति के विरुद्ध इधर उधर से किये जाने वाले आक्रमणों के परिणाम स्वरूप इस देश के नागरिकों में भी ऐसा वर्ग उत्पन्न हो गया है जो अपनी संस्कृति, सभ्यता और भाषा की मूल्यवान धरोहरकी ओर से उदासीन ही नहीं है, अपितु इसके प्रति शंकालु भी रहता है। उसे यह स्मरण रखना चाहिये कि संस्कृत का साहित्य विश्व की सम्पत्ति है और उसके अध्ययन द्वारा ही हम अतिती से अपना मेल रखते हुए आधुनिकता के साथ समन्वय एवं संतुलन का निर्माण कर सकते हैं।

'स्वातन्त्र्य चिन्तमणि' दो नाट्य रचनाएं सम्मिलित हैं जिनमें से एक का संबंध राणा प्रताप से है तथा दूसरी मध्यप्रदेश के अमर विभूति महाराजा छत्रसाल से सम्बन्धित हैं। दोनों ही रचनाओं में प्रसाद गुण पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। इस विशेषता के कारण यह रचना संस्कृत का सामान्य ज्ञान रखने वालों के लिये उपयोगी है। मेरा यह मत है कि सरल संस्कृत में रचित इन नाटकों के अभिनय से बालकों पर संस्कृत भापा के और उनमें राष्ट्रीय भावना के अंकुर उत्पन्न होंगे।

धर्मपालसिंह गुप्त
शिक्षा मन्त्री, मध्य-प्रदेश

Swatantrya-Chintamanee

गौरवोद्‌गारहाराय गुरुगर्वप्रहारिणे
गीर्वाणवाग्विहाराय हरये गुरवे नमः ॥

This book contains two radio plays produced by the A. I. R. in Madhya Pradesh. Both are based on two national historical figures viz. Rana Pratap of Mewar and Raja Chhatrasal of Bundelkhand. One is entirely in verse while the other is in prose with a few songs. Both are based on certain episodes which are partly historical and partly imaginary. One of these brave patriots was successful in holding his own against the invaders while the other did not succeed but at the same time, did not surrender. The spirit of patriotism and the acceptance of sufferings in order to serve the people are virtues required even to-day. It is for such an undaunted spirit that we honour these heroes even to-day and a persual of their lives would certainly be beneficial to a modern student of this country. Both these pieces are capable of being produced on the stage and such a stage performance in the Schools and Colleges would not only evoke an interest in the ancient language but also in the historical past the glories of which must provide inspiration for the future.

In printing, certain liberties have been taken principally in effecting Sandhis or otherwise. In other words, Sandhis have been treated as optional. This step would probably make for an easier reading for those who are amateur lovers of Sanskrit. A Hindi translation has been added for the play in verse. Some notes also have been added, which it is hoped, would be found useful.

My thanks are due to Sur-Bharati for undertaking the publication of these plays under the present title as also to those who at the request of Sur-Bharati have contributed their appreciation in the form of forewords to this book.

Lastly

सौख्यानां बलिदानमेव भुवने यैः स्वीकृतं शाश्वतं
तेषां सन्ति कथाः प्रतापवहुला आवालवृद्धोद्धताः ।
तासु द्वे इतिहासकल्पनपरे युक्त्वा प्रणीता कृतिः
स्यात्सर्वाभिमता स्वराष्ट्रयशसे स्वातन्त्र्यचिन्तामणी ॥

Bhopal
26-1-1969

S. B. VELANKAR

गीर्वाणसुधा १५

स्वातन्त्र्य – चिन्ता

[नभोनाट्यं]

श्री. भि. वेलणकर

'स्वातन्त्र्यचिन्ता' नभोनाटयं 'भोपाल' आकाशवाण्या २-६-१९६६ दिने ध्वनिक्षेपितम्। तदेव इन्दौर-ग्वालियर-जबलपुर-रायपुर-केन्द्रेभ्योऽपि पुन-क्षेपितम्। तत्रांशभागिनः कलाकारा अधोनिर्दिष्टाः।

निवेदयित्री	—	सुवर्णा वेलणकर
यमुना	—	विनता वेलणकर
अमरसिंहः	—	रमेश नाडकर्णी
चन्द्रावत्कृष्णः	—	वालकृष्ण टल्लू
मानसिंहः	—	नरहर चन्दवासकर
प्रतापसिंहः	—	पंडितराव चाटी

लेखको दिग्दर्शकश्च

दादासाहेब वेलणकर

निर्मितिः

देववाणीमन्दिरद्वारा

सुधा वेलणकर

Swatantrya-Chinta

गौरवोद्गारहाराय गुरुगर्वप्रहारिणे
गीर्वाणवाग्विहाराय हरये गुरवे नमः ।।

Rana Pratap was a gem in Indian History, whlch shone brillantly iu adversity. He was not succesful iu stemming the tide of advance of the Moghul emperor Akbar in the 16th century A. D. but he kept the spirit of resistance alive by his valour and by his sacrifice in renouncing his capital of Udaipur and taking to Aravali Hills. It was the best guerilla warfare organised before the advent of the Marathas in opposing the Moghul expansion. The present composition is primarily a homage to his greatness.

The actual story is not a fully historical episode though the encouuter between the Moghulised Mansingh and the Lion of Aravalis, Pratap Sinha has some historical basis. Legend has also glorified the unconsummated romance between Yamuna, the princess of Bikaner and Amarsinha the prince of Mewar, son of Rana Pratap.

I thank all the well-wishers who wrote to me after listening to the play. I also thank the participants.

A few notes added at the end will be found useful.

Bhopal. 1-10-1968 —S. B. Velankar.

स्वातन्त्र्य–चिन्ता

(निवेदयित्री)

गौरवोद्गारहाराय गुरुगर्वप्रहारिणे ।
गीर्वाणवाग्विहाराय हरये गुरवे नमः ।।

भारतवीरसुतानां प्रभूताः कथास्तेजस्विन्यः। तत्र मेवाडराजस्य श्रीप्रतापसिंहस्य कथाः प्रमुखतो राजस्थानेषु ग्रामे ग्रामेऽद्यापि गीयन्ते । अनेन वीरवरेण स्वातन्त्र्यार्थे कष्टं जीवनं स्वयं वृतं तद् व्रतं चामरणं परिपालितम् । तस्य सुतस्य वीरमणि-अमरसिंहस्य विफला प्रणयकथा विशेषतः स्फूर्तिदा । तस्या असौ कल्पनाचित्रितो नभोनाट्यरूप आविष्कारः ।

खिस्ताब्दानाँ षोडशे शते घटिता कथेयम् । बिकानेरनरेशेन निजभगिनी यमुनाऽमरसिंहपत्नीत्वेन मनीषिता । न तु सा यवनवशे यायादिति विवाहपूर्वमेव, अरवलीगिरिवने प्रतापसिंहनिवासे प्रेषिता । तत्र यवनैः सह युध्यमाना सा हता, इति कथामूलम् । अस्मिन् नाटके तु राज्ञः प्रतापसिंहस्य, अकबरसचिवमानसिंहेन सह स्वतन्त्रताविषये विवादः कल्पितः, प्रणयत्यागश्च समुद्घोषितोऽमरसिंहेन ।

स्वातन्त्र्यचिन्तामधिकृत्य प्रणीतमिदं नाट्यं श्रूयताँ—स्वातन्त्र्यचिन्ता ।

(नान्दी)

स्वतन्त्रते माङ्गल्यदेवते ।
चिरेण ते पदरजो राजते ॥१॥
नतेन ते मन्दिरं गम्यते ।
नते नते ते कृपा वर्धते ॥२॥
काराधामनि न सुखं शेते ।
का राधा हरिहीना रमते ॥३॥
जनाऽऽद्दते किल लोकतन्त्रते ।
जनाद्-ऋते कुत उदितं तनुते ॥४॥

(वननादाः श्रूयन्ते)

अमरसिंहवाग्दत्तवधूर्या
बिकानेर-पति-भगिनी सदया ।
अरवलीवने प्रतापावने
मधुरगुञ्जना प्रविशति यमुना ॥५॥

इति प्रस्तावना ।

(ततः प्रविशति यमुना प्रतापसिंहशिबिरसमीपमरवलीवने स्वैरं विहरन्ती ।)

यमुना

(गायति)

विजयते स्वातन्त्र्यपताका ।
चिरंजीविनी चारुचन्द्रिका ॥६॥
विरसितदास्ये नवरसात्मिका ।
संसृतिरङ्गे सुसंगीतिका ॥७॥
भवजलधौ ननु दोलननौका ।
विषयिततिमिरे ध्येयदीपिका ॥८॥
प्राचीशैले किरणशलाका ।
नवरविनिर्मितभाग्यसुरेखा ॥९॥

अमरसिंहः

(अविज्ञातः प्रविश्य, तस्या नेत्रे पिधाय)

का त्वं रमणी कुत आयाता ।
मामनुचिन्तय तेऽहं त्राता ॥१०॥
कालः क्रीडति षड्ऋतुचक्रे ।
स्वतन्त्रतायाः किमु ते गाथा ॥११॥
रसिकमधुकरो वीक्ष्य कमलिनीं ।
गुञ्जनसाम्ना हृदयोद्गाता ॥१२॥

यमुना

[तमेव स्वरमनुसृत्य, प्रीता]

यथा पतङ्गो निजतनुहोता ।
तथा कथा ते परिसंभविता ॥१३॥
स्वतन्त्रताया ज्वलितः पन्थाः ।
व्रतं चरति ते प्रतापी पिता ॥१४॥
भवेत् कमलिनी सायं म्लाना ।
स्वातन्त्र्यश्रीः सदा विकसिता ॥१५॥

अमरसिंहः

घने वने मृगयोपजीविका ।
वननिवासिनां कुतो दासता ॥१६॥
एहि मोहने स्नेहसहचरौ ।
दुर्गमदेशे नौ स्वतन्त्रता ॥१७॥

[अश्वपादध्वनिः श्रूयते]

यमुना

क एष वीरः सजवं निजाश्वं
प्रधावयन्नेति विधूतशस्त्रः ।

अमरसिंहः

चन्द्रावदेष प्रथितो हि कृष्णः ।
तातप्रतापस्य चिरं वयस्यः ॥१८॥

[ससंभ्रमं चन्द्रावत्कृष्णः प्रविशति]

चन्द्रावत्कृष्णः

राजपुत्र, विनीतोऽहं चन्द्रावदभिवादये ।

अमरसिंहः

श्रेष्ठिन् ! आगमनं तेऽत्र सजवं केन हेतुना ॥१९॥

चन्द्रावत्कृष्णः

राज्ञः प्रतापस्य महाव्रतस्य
स्वीकार्यमातिथ्यमिति प्रघोष्य ।
महाकुलाङ्गार इतः समीपं
शत्रोर्हि मन्त्री नृपमानसिंहः ॥२०॥

अपि च,

यात्रां विलोक्य महतीं च तदीयसेनां
पीडामयाचितकृतां च विशङ्कमानः ।
आरुह्य संगरहयं हि विना विलम्बं
आयात एष; भवतो वचनं प्रमाणम् ॥२१॥

अमरसिंहः

निवेदयस्व ताताय वार्तामेतां श्रुतां द्रुतम् ।
आदरातिथ्यसिद्ध्यर्थं, आदिश्यन्तां च सेवकाः ॥२२॥

चन्द्रावत्कृष्णः

कृतो भवद्वचोग्रहः
सदा भवत्वनुग्रहः ।
प्रणश्यतां च विग्रहः
सुखोऽस्तु सत्परिग्रहः ॥२३॥

[निष्क्रान्तः]

अमरसिंहः

तथास्तु ।

केयं वार्ता ।
पापकृपा किल शापनिलिप्ता ॥
न हि निमन्त्रितो न वाऽभ्यर्थितो
रिपुशिविरादयमग्निरुत्थितो
दहेद्वनमिदं, मतिः कुण्ठिता ॥२४॥

यमुनां

मैवं—

रजपूतवंशजानां
कुलधर्मसंपदेषा ।।
पूजा सदातिथीनां
प्रभवेन्न चान्यभाषा ।।२५।।
न हि सुहृदरातिभेदं
किरणे करोति पूषा ।।
अद्यैव मा प्रमादं
विदधातु ते मनीषा ।।२६।।
जनकः सुधीप्रतापो
भवतां प्रधानभूषा ।।
वसतात् कुलस्य कीर्तिः
सुचिराय धवलवेषा ।।२७।।

[अश्वखुरध्वनिः श्रूयते]

[मानसिंहः प्रविशति ।]

अमरसिंहः

[पुरो गत्वा]

स्वागतं भवतो राजन् कमल्मीरवनाश्रये ।
पुत्रोऽहं श्रीप्रतापस्य भवन्तमभिवादये ।।२८।।

[ससेवकश्चन्द्रावत्कृष्णो भोज्यपेयानि गृहीत्वा प्रविशति ।]

पूजां यथाबलकृतां स्वीकुरुष्व महीश्वर ।
नात्र प्रासादसौधास्ते न विलासा वनस्थले ।।२९।।

चन्द्रावत्कृष्णः

कन्दमूलफलोञ्छानामुपहारोऽयमाहृतः ।
श्रगाणां परिहारं तं सेवित्वा कर्तुमर्हसि ।।३०।।

अमरसिंहः

चन्द्रावतोऽत्र गदितं मदीयं हि मनीषितम् ।
मा संकोचः स्ववृत्तीनां यथेच्छसि तथा कुरु ।।३१।।

मानसिंहः

सन्तुष्टोऽसौ स्वागतैर्मानसिंहः
नापेक्षा मे राजभोगोत्सवानाम् ।
आसीद्वाञ्छा प्रेक्षितुं राजसिंहं
कुत्रास्तेऽसौ प्रांशुमेवाडराजः ।।३२।।

चन्द्रावतृष्क्रणः

अत्रागन्तुं नास्ति राजा समर्थः
स्वामी चित्ते नाधुना स्वस्थभावः ।
क्षेमप्रश्नं हार्दिकं मन्मुखेन
पृच्छत्येष प्रीतमेवाडनाथः ।।३३।।

मानसिंहः

[सोपहासं]

उदयपुरविहाने तस्य नीतिर्नु हीना ।

[सक्रोधं]

अतिथिजनधुरीणे नूनमेषा सपर्या ।

[सवितर्कं]

नरपतिवरवृत्तौ स्यात् प्रजानां सुचर्या
विभवमनु समग्रं राजशीलं हि नष्टम् ।।३४।।

प्रतापसिंहः

[सहसा प्रविश्य]

कुतः शीलं हि नष्टं मे
यस्य स्वातन्त्र्यलालसा ।
त्यक्त्वापि विभवं ज्वाला
जाग्रत्यग्नेः सुरक्षिता ।।३५ ।।

कुतः शीलं हि नष्टं मे
यन्नाहं शरणं गतः ।
दिल्लीश्वरसभागारं
मेवाडक्षेमकाङ्क्षया ।।३६।।
कुतः शीलं हि नष्टं मे
यन्मया न वृताप्तता ।
यवनै रिपुभिः साधं,
ऐहिकोन्नतिवाञ्छया ।।३७।।
कुतः शीलं हि नष्टं मे
यदद्यापि स्वतन्त्रता ।
सहाया मे स्थिता नित्या
न कदापि हि खण्डिता ।।३८।।
शीलं प्रनष्टं तेषां स्यात्
स्वीकृता यैर्हि दासता ।
सत्ताधीश्वरभूपानां
जीविकापूर्तिसाधनम् ।।३९।।
शीलं प्रनष्टं तेषां स्याद्
येषां हि कुलजाः सुताः ।
यवनीत्वं समानीताः
कुलधर्मविनाशनाः ।।४०।।
शीलं तेषां प्रनष्टं यै—
र्मानिता न स्वतन्त्रता ।
दास्यच्छत्रावृता येषां
यात्रा दृष्टा निरामया ।।४१।।
न मे विनष्टं शीलं भो
मानसिंह सुहृद्भ्रुव ।
यावच्चासिलता दीप्ता
न तावच्छीलशङ्किता ।।४२।।

मा शीलमुच्चारयताज्
जिह्वा ते दास्यपङ्किला ।
न त्वं जानासि सच्छीलं
किं वृथा जल्पनेन ते ।।४३।।

रजपूतकुलध्वंसः
साधितो यैर्नराधमैः ।
तेषाँ शीलं विमृष्टव्यं
न मे राजन्! न मे ! न मे ! ।।४४'।

मानसिंहः

[सखेदं]

ममापमानो न दुनोति राजन्
यतो न जानासि नृपस्य धर्मम् ।
प्रजाः सुखं यत्र वसन्ति राज्ये
ततः सुराज्यं, कथमन्यथा तत् ।।४५।।

प्रतापसिंहः

[साभिमानं]

स्वराज्येऽधिकारो जनानां स नित्यः
सुराज्यं भवेद्वा न वा स्यात् कदाचित् ।
स्वराज्ये सुराज्यं प्रजाभिर्नियोज्यं
स्वराज्यस्य तृष्णा सुराज्यैर्न शान्ता ।।४६।।

यमुना

अधिकारे नित्यदीक्षा
स्वराज्यमन्त्रे नोपेक्षा ।।
नागरिकाणां सत्त्वपरीक्षा
रिपुसेनानां सदा प्रतीक्षा
व्यक्तिहितानां नापेक्षा ।।४७।।

मानसिंहः

नैष विषयो धर्षणीयस्त्वयैवं
वृथा श्रान्ति मा गमो राजबाले ।
अमी केशा धवलिता मया यावत्
त्वया न ज्ञाता जीवनौघधारा ॥४८॥

अमरसिंहः

कुत एतत् ?—

रजपूतबाला

कलिका वह्नेरियं साधिता
छादितापि साऽङ्गारज्वाला ॥
न राज्यकार्यं जानीयात् सा
वृता न तस्या रिपुणा कुत्सा
कृता तया न च दास्यचिकित्सा
सुकुमारमाला ॥४९॥

मानसिंहः

अमरसिंह, कुमार न ते वचो
जर्गात वत्स ! विचारणमर्हति ।
रणभुवं न विलोकितवान् भवान्
तरुणिमा प्रणयं वदयेत् त्वया ॥५०॥

अमरसिंहः

शृणु तर्हि—
न यावन् मेवाडा रिपुभयविमुक्ताः सुविहिता
न वा यावद् राजन् ! उदयपुरहर्म्येषु वसतिः ।
न वा यावत् तातो विजितयवनो भूमिरमणो
न तावत् काङ्क्षामि प्रणयिजनसौख्यानि भुवने ॥५१॥

प्रतापसिंहः

हर ! हर !! महादेव !!!
भो अम्बराधीश ! रणाङ्गणेषु
स्यान्मेलनं नः प्रतिपक्षभिन्नम् ।
आमन्त्रये, तावदधीरतां त्वं
मा दर्शयेराहवयज्ञकुण्डे ॥५२॥

[निष्क्रान्तः]

मानसिंहः

प्रतापो दुर्दान्तो रिपुरपि प्रतापं न सहते
प्रतापेनोद्भूता दिशि दिशि प्रतापायनकथा ।
प्रतापादुद्युक्तं हृदि हृदि प्रतापस्य कवनं
प्रतापेष्ट्यां कीर्तियंश उत प्रताप ! प्रलयितम् ।।५३।।

[निष्क्रान्तः]

चन्द्रावत्कृष्णः

दैवस्य दुर्विलासान्
को जानीते नरः प्रतापोऽपि ।
दुरतिक्रमः स्वभावो
यद् भावि न तच्च परिहार्यम् ।।५४।।

[निष्क्रान्तः]

अमरसिंहः

यमुने ! ते मेलनं
स्वराज्यगङ्गायां हि पावनम् ।।
त्वया विना मे नैव जीवनं
रणेऽद्य यानं, न तवोद्वहनं
प्रिये तवेदं नावहेलनम् ।।५५।।

यमुना

विलोक्यावनीं जननीमार्तां
सुतसिंहो निजगुहां लङ्घताम् ।
वीरा ललना संप्रतीक्षतां
विजयश्रीवन्दनम् ।।५६।।

[भरतवाक्यं]

अमरसिंह–यमुना–व्याख्यानं
श्रीरामसुधाविहितमोहनं
भूयाद् भारतसमुत्तेजनं
यमुने ते मेलनम् ।।५७।।

NOTES

V. 1 to 4 रागः– दुर्गा; तालः– धुमाली, विलंवितकेरवा वा ।

V. 5 रागः– केदारः, तालः– द्रुत केरवा

V. 6 to 9 रागः– वागेसरी, तालः– त्रितालः

V. 10 to 17 रागः– पिलु, तालः– केरवा ।

सामगान, उद्गाता and होता keep up a metaphor with a pun on होता.

V. 18 उपजातिः Here the music suddenly breaks changing the mood and the speed of the play.

V.19 अनुष्टुप् V,20 उपजातिः V. 21 वसन्ततिलका

V.22 अनुष्टुभ् V.23 प्रमाणिका

V.24 रागः– जीवनपुरी, तालः– त्रितालः

V.25-27 रागः– देसः, तालः– केरवा A Gazal

V.28-31 अनुष्टुप्

कमल्मीर The name of the forest in Aravalis where the Rana was staying at the time.

V.32-33 शालिनी V.34 मालिनी

V.35 to 44 अनुष्टुभ्

V.45 उपेन्द्रवज्रा V.46 भुजङ्गप्रयातम्

V.47 रागः– शङ्कराः, तालः– त्रितालः

V.48 दिण्डी– मात्रावृत्तं षण्मात्रावर्तनं

V.49 रागः– खमाजः, तालः– केरवा

V.50 द्रुतविलंबितं

V.51 शिखरिणी V.52 इन्द्रवज्रा

V.53 शिखरिणी The use of all विभक्तिs serially is only apparent to the ear not real to the sense.

V.54 आर्या

V.55 to 57 रागः भैरवी, तालः त्रितालः ।

स्वातन्त्र्यचिन्तान्तर्गतसुभाषितानि ।

पृष्ठाङ्क

स्वतन्त्रते माङ्गल्यदेवते इति सकलं गीतं १२
विजयते स्वातन्त्र्यपताका- इति सकलं गीतं १३
भवेत्कमलिनी सायं म्लाना
स्वातन्त्र्यश्रीः सदा विकसिता ।। १४
पापकृपा किल शापनिलिप्ता १५
रजपूतवंशजानां कुलधर्मसंपदेषा
पूजा सदातिथीनाँ प्रभवेन्न चान्यभाषा ।। १६
न हि सुहृदरातिभेदं किरणे करोति पूषा ।। १६
नरपतिवरवृत्तौ स्यात् प्रजानां सुचर्या १७
स्वराज्येऽधिकारो जनानाँ स नित्यः-इति सकलः श्लोकः
अधिकारे नित्यदीक्षा इति सकलं गीतम् । १९
रजपूतबाला २०
कलिका वह्नेरियं साधिता छादितापि साङ्गारज्वाला
दैवस्य दुर्विलासान् को जानीते नरः प्रतापोऽपि ।। २१
दुरतिक्रमः स्वभावः । २१
यद् भावि न तच्च परिहार्यम् । २१
विलोक्यावनीं जननीमातसुतसिंहि निजगुहां लङ्घतां
वीरा ललना संप्रतीक्षतां विजयश्रीवन्दनम् ।। २२

स्वातन्त्र्य-मणिः

[नभोनाट्यं]

श्री. भि. वेलणकर

Swatantrya-mani

गौरवोदगारहाराय गुरुगर्वप्रहारिणे
गीर्वाणवाग्विहाराय हरये गुरवे नमः ।।

Rana Chhatrasal of Mahoba, Prince of Bundelkhand was one of the few rulers who successfully maintained his independence against Moghuls while other kingdoms were crumbling away. He was a daring and imaginative young prince as depicted in this play. His father Champatrai, ruled the kingdom of Mahoba. Feuds and rivalry with neighbouring petty chiefs such as Orchha, Dharir etc, were the undoing of these small territories and Chhatrasal had to contend with all of them even after his father's treacherous death.

The play depicts the efforts of the rulers of Dharir to subjugate Mahoba out of jealousy even with the possibility of being overtaken by Moghuls in the 17th century A. D. Chattrasal is said to have taken a sojourn to south to watch the rise of Marathas overthrowing alien domination.

The spirit of the contemporary youth of both the sexes is the main theme.

Bhopal 1-11-1968 S. B. Velankar

इन्दौर-आकाशवाण्या ध्वनिमुद्रितं । इन्दौर-भोपाल-ग्वालियर-जबलपुर-रायपुर-आकाशवाणी-केन्द्रैः ६-३-१९६७ दिने ध्वनिक्षेपितं ।

पात्राणि

हिरादेवी	—	Queen of Orchha
सभाकरणः	—	Ruler of Savgor
दलपतिः	—	His Son
चंपतरायः	—	Ruler of Mahoba
छत्रसालः	—	His Son
विजया	—	Princess of Dharir, Niece of Hira Devi
ललिता	—	Long lost Sister of Sabhakarana

Action takes place in Mahoba

स्वातन्त्र्यमणिः

(निवेदयित्री)

गौरवोद्गारहाराय गुरुगर्वप्रहारिणे
गीर्वाणवाग्विहाराय हरये गुरवे नमः।।

भारतवीराणां कथासु बुन्देलखण्डनृपस्य महोवाधिपतेः श्रीछत्रसालस्य चरितं पराक्रमातिशयेनादरार्हम्। दिल्लीश्वरमौंगलानामाधिराज्यं न मानितमनेन महाभागेन। ख्रिस्ताब्दानां सप्तदशशतोत्तरार्धे संजातोऽसौ महोबापुत्रः। अष्टादशशतकस्य प्रथमार्धेऽपि स्वतन्त्र एव स शशास।

तस्य तरुणवयसः स्वरूपं चित्रितं अत्र नभोनाट्ये। बुन्देलानां तत्कालीनोऽन्तःकलह आसीत्। तमतिरुह्य स्वातन्त्र्यार्थे वीरव्रताचरणं छत्रसालस्य श्रूयतां दृश्यतां चात्र स्वातन्त्र्यमणि-नाट्ये।

१

(धारीर-राजकन्या विजया विन्ध्यवासिनी-मन्दिरे
प्रार्थयमाना प्रविशति ।)

विजया—

विन्ध्यवासिनी विजयिनी
बुन्देलावनिजनस्वामिनी ॥
स्वतन्त्रता-तेजो-विभावनी
अरिनिर्दलन-नियमशासनी
प्रभवतु देवी कृपादायिनी ॥१॥

[सागरराज-पुत्रो दलपतिः प्रविशति]

दलपतिः—विजये, कृतमनेन देवीस्तवेन ।

विजया (सहसोत्थाय ससंभ्रमं)—राजपुत्र दलपते, किं आक्षिपसि ?

दलपतिः—ननु न जानाति धारीर-राजकन्या विजया ? अद्यैव खलु अस्य मन्दिरस्य संहारो नियोजितः शत्रुसेनापतिना ।

विजया (कष्टं)—जाने । सागरराजकुमार, जाने । कथं न खलु जानामि अहमेतत्—

दुर्जनान्तःपुरे निर्गतं न हि मया
तत् कुतो मन्दिरे स्यादरातेर्दया ॥
प्रार्थये देवतां देहदाहं हि मे
स्यात् तु बुन्देलभूः संचितैरुज्जया ॥२॥

दलपतिः (ससंभ्रमं)—प्रतिहतमत्याहितम् । जानीहि विजये, यदिदानीं किमत्र त्वरया प्रैषितः स्वातन्त्र्यमणिना श्रीछत्रसालेन इति ।

विजया (सादरं)—किमाह स सुगृहीतनामधेयो महोवाराजपुत्रः ?

दलपतिः–मन्दिर-दुरित-निवारणार्थं शत्रुदासीत्व-परिहारार्थं च धारीर-राजकन्या विजया किमपि अतर्कितं अत्याहितं समाचरेत्। तन्निवारणाय सत्वरं तत्र गच्छ, इति।

विजया (सोत्कण्ठं)–एवमुक्तं तेन महाभागेन। तत् कथं स न स्वयमेव आगतः?

दलपतिः (सदयं)–विजये, यद्यपि तस्मिन् परमानुरक्ता भवती, तथापि तस्य वहूनि व्यवधानानि। न तव कृते स निजकार्यं विहाय प्रेमालापान् कर्तुं (सोपहासं) इह समेयात्।

वध्नातु सदा दलपाशै–
स्तरुं दृढं सुकुमारलता।
अवलोकयते साकूतं
प्रांशुरसौ गगने धर्ता ॥३॥

विजया (सविनयं)–जानामि दलपते, जानामि यन्मम पूजनेन न देवोऽधिगन्तव्यः। (सनिश्चयं) तथापि–

शूराभिलषणं
भावनिर्भरस्त्रियो जीवनं॥
चन्द्र-चुम्बने सागरलहरी
समुच्छलति या गगनसंवरी
जानीते सा न मेलनं ॥४॥

भवतु। कुत्र वर्तते स महाभागोऽधुना?

दलपतिः (सगाँभीर्यं)–न त्वया तज्ज्ञातव्यं न मयापि कथनीयं विजये।

विजया (सविस्मयं)–कथमिव?

दतपतिः (साभिप्रायं)–त्वत्पिता धारीरराजः कञ्चुकिरायः शत्रुस्नेही। (सवितर्कं) अतः खलु नाभिमतं भवेद् भवत्या राजपुत्र-छत्रसालस्य आचरितं, इति शङ्क्यते।

विजया (सादरं सकरुणं)–अपि नाम अस्ति कोऽपि भारतपुत्रः, यश्छत्रसालस्य आचारान् नाभिनन्दति। अपि च–

छत्रसाल-चरितवृता भारतजन-सेवा
रिपुसागरमुत्तराम दैवाहृतनावा ।।
भाग्यं बुन्देलभूषु दधति सकलदेवाः
विन्ध्यवासिगोंडानां यथा नदी रेवा ।।५।।

दलपतिः—अचिरादेव द्रक्ष्यसि तं महाचरितं स्वातन्त्र्यमर्णि विजयानुगृहीतम् ।

विजया—विजयानुगृहीतं ?

दलपतिः—शत्रुं विजित्य अनुगृहीतं, न विजयया राजकन्यया अनुगृहीतं इति जानीहि ।

विजया—न मे अनुग्रहं अवलम्बते एष दलपते । जानामि एतत् । अहं पृच्छामि कं शत्रुं विजयते असौ अद्य इति ।

दलपतिः-मन्दिरध्वंसनेप्सुं रिपुसेनापतिम् ।

विजया-(ससाध्वसं) तत् किं स युद्धे प्रवृत्तः ? कदा ? कुतः ?

दलपतिः-मा भैषीः । पश्य । असौ आयाति छलसालपिता चंपतरायस्त्वरया इव । न जाने किं संजातमिति ।

(चंपतरायस्त्वरमाणः प्रविशति ।)

चंपतरायः (परितो दृष्टवा सनिर्वेदं)—अत्रापि नास्ति छत्रसालः ? कुमार दलपते, कथं न त्वया सहाप्येषः ? मया त्वनुमितं द्वावपि भवन्तौ संगता एव विचरत इति ।

दलपतिः—नमस्ताताय । भवत्पुत्रोऽप्यधुनैव विजयमण्डितोऽत्राविर्भविष्यतीति मन्ये ।

चंपतरायः—न जाने कथं साहसाद् रोद्धव्य एष इति ।

विजया—नमस्ते तात । किमसौ रोद्धव्यः । भवदाचरणानुवर्त्येषः । बुन्देल-खण्डं स्वतन्त्रं रक्षितुं बद्धपरिकरो भवान् ।

स्वातन्त्र्यसुषमा
हृदये निभृता धृता निरुपमा ।।
यथा किल पिता पुत्रो हि तथा
आर्तकामना मानसे समा ।।६।।

हिरादेवी (प्रविश्य)—किमत्र दृश्यते सागरराज सभाकरण ?

यवनद्वेषिणश्चंपतरायस्य सांनिध्ये भवत्पुऽत्रोस्मिन् मन्दिरे ?

सभाकरणः—ओरछामहिषि हिरादेवि, प्रतिबज्ञाद्धं मे शरीरमेव केवलं न मे पुत्रः ।

हिरादेवी—तत् किं भवत्पुत्रो भवन्तमभियोत्स्यते ?

सभाकरणः—यदि बुन्देलखण्डसंरक्षणार्थं तदवश्यं समापतेत् तर्हि तदपि संभवेदेव ।

हिरादेवी—कोऽत्र हेतुः ?

सभाकरणः—बुन्देलप्रजायाः स्वातन्त्र्यं मम पुत्रस्यापि प्रियं, यथा मे । अहं पुनर्बद्धः प्रतिज्ञापालनार्थं देवि । तच्च स्वातन्त्र्यविनाशकारि । अतः पुत्रपित्रोर्युद्धमप्यवश्यंभावि । तथापि पुत्र एव तत्र जेता स्यादोरछादेवि ।

छत्रसालः—(प्रविश्य, पितरं वीक्ष्य) अभिवादये तात ।

चंपतरायः—चिरं जीव पुत्रक । कथं त्वियं तेऽसिलता रुधिर-स्नाता ?

छत्रसालः—देवीमन्दिररक्षणार्थे रुधिराभिषेकोऽसौ । समरयज्ञे कथमेतत् परिहार्यम् ?—

महिषासुरमर्दिनी दाहिनी
भैरवरमणी रणे वाहिनी ॥
नेयमसिलता पाणिना धृता
दुष्टदण्डिका चण्डिकाग्रणीः ॥७॥

हिरादेवी—राजपुत्र, कोऽयं दुष्टस्त्वया हतः ?

छत्रसालः—ओरछाराज्ञि, यवनसेनानीः-

हिरादेवी—(सभयं) निहितः?

छत्रसालः—मा भैषीः । जीवत्येव भवत्सुहृत् सोऽस्मद्दुर्दैवात् ।

सभाकरणः—तत्कस्य रुधिरमेतदसिलतायां कुमार ?

दलपतिः—वदतु सत्वरं भवान् ।

छत्रसालः—सागरपते, धारीरराजः कञ्चुकिरायः—

विजया—किमभवत् तातस्य ?

छत्रसालः— शान्तं विजये । भवत्पित्रा कञ्चुकिरायेन रक्षितो यवनसेनानीः ।

चंपतराय:–(अधीरतया) तत्कस्यैतद्रुधिरं पुत्रक ?

छत्रसाल:–ममैव, तात, ममैव ।

विजया–हन्त ! कथमेतत् संभूतम् ?

दलपति:–किमेतत् साहसं छत्रसाल ?

छत्रसाल:–न हतो मन्दिरविध्वंसनैषी मयाऽतः स्मरणार्थं मयैव मे रुधिरं पायितं खड्गेन ।

चंपतराय:–हन्त ! न शुभं निमित्तमेतत् पुत्रक यत् तवैव रुधिरं तव खड्गेन परिहितम् ।

हिरादेवी–अशुभमेव भवतः संभवति चंपतराय ! दिल्लीश्वरशत्रुत्वे निरतस्य किमन्यत् संभवेत् ।

दलपति:–का कथा मन्दिररक्षणस्य ?

छत्रसाल:–यवनसेनापतिनैव प्रतिश्रुतं मन्दिरस्याभयम् । अत एव जीवति वराकः ।

दलपति:–अथ विजया—?

छत्रसाल:–धारीरराज एतं प्रश्नं विचाराधीनं रक्षति किल !

सभाकरण:–हिरादेवि, बुन्देलानां दिल्लीश्वरशत्रुत्वं यावज्जीवमेव स्वाभाविकम् । अहं तस्य सहायः केवलं मम स्वसुःकृते-वैरनिर्यातनाय ।

चंपतराय:–किमेतत् सभाकरण ?

सभाकरण:–हिरादेव्यैव निवेदितः स वृत्तान्तो मे ।

चंपतराय:–न जानामि कंचन हेतुं तव भगिन्या विषये बुन्देलैः सह तव वैरनिर्माणं तन्निर्यातनं वा । जानात्येव भवान् सा ललिता मम पत्नीत्वेन संकल्पिता प्रथमतः । तयैव कथितं मे प्रागन्तर्धानात् सर्वं घटितम् ।

सभाकरण–कवन्धो मह्यं दर्शितस्तस्या अन्तर्धानान्तरं तस्या इति कृत्वा । बुन्देलानां कृत्यमासीत् तद्घातनं, इत्यपि कथितवती हिरादेवी । अत एव तेषां विनाशार्थं यवनसहायतायै च मया प्रतिज्ञापितं तया ।

चंपतराय:–ननु त्वया प्रत्यभिज्ञातः स देहस्तव: भगिन्या एवेति ?

सभाकरण:–न प्रत्यभिज्ञातः । न तत्र मूर्धाऽऽसीत् । वस्त्राणि नु कवन्धे, मम भगिन्या एवाऽऽसन् ।

चंपतरायः–न मृता तव भगिनी, जीवत्येव सेति मन्ये सभाकरण ।

सभाकरणः–किमेतत्, हिरादेवि ?

हिरादेवी–दिल्लीश्वरपक्षे भवाँस्तत एव समागतः —

सभाकरणः–अतः मम स्वसृविषयेऽसत्यममङ्गलं च कथितं देवि ?

हिरादेवी–न तु सर्वं तदसत्यं ननु ।

सभाकरणः–किमेतत्, महोबाधिपते चंपनराय ?

चंपतराय–न तद् रहस्यं विशदीकर्तुं क्षमोऽहम् । शपथबद्धोऽहमत्र । निर्गच्छाम्यहम् ।

सभाकरणः–अहमप्यागच्छामि । (उभौ निर्गच्छतः ।)

दलपतिः–(छत्रसालो विषण्णमनसा निर्गच्छति तं पश्यन्) किं रहस्यं कथानकं भवेदिति न ज्ञायते ।

हिरादेवी–अज्ञानमेव सुखदं सागरेशसुत । (निर्गच्छति)

(दलपतिः किंचिद् विमृश्य छत्रसालमनुसरति ।)

विजया–गताः सर्वे । मन्दिरं खलु सुरक्षितं नाहमपि बञ्चितेति सम्यक् सर्वं संभूतं देवि तवेच्छया ।

नाकलिता लीला, देवते
सरित् संभवेदनलितसलिला ॥
का विधिघटना कथं परिणता
कृपायाचना प्रसादशोला ॥८॥

[निष्क्रान्ता]

॥ इति प्रथमोऽङ्कः ॥

२

[हिरादेवीप्रासादे हिरादेवी सभाकरणश्च संवदतः ।]

हिरादेवी–सागरराज सभाकरण, नेदं महोबाराज्यं लघुत्वात् स्वतन्त्रता-मर्हति । तत् कथं मन्यते भवान् ।

सभाकरणः–सर्वं बुन्देलखण्डमेव स्वतन्त्रं जीवितुमर्हति । तत्र कोऽपवादो महोबाभूमेः ?

हिरादेवी–ननु मन्यसे महोबापतिश्चंपतरायः सज्जन इति ?

सभाकरणः–अथ किम् !

हिरादेवी–(साकूतं) शृणु तर्हि । तव भगिनी ललितादेवी चंपतरायेणाधः–पातिता ।

सभाकरणः–हिरादेवि, जिह्वां संयम्यैव त्वया गदितव्यम् । नोचेत्, अव-शोऽयं जनो भवेत् ।

हिरादेवी–तस्मिन् सा स्निग्धाऽऽसीदिति तु त्वया ज्ञातमेव ।

सभाकरणः–जानाम्येतत् ।

हिरादेवी–तेन चंपतरायेनैव, विना पाणिग्रहण-विधिना सा वलात् —

सभाकरणः–(सगर्जनं) शान्तम् ।

हिरादेवी–अत एव सागरराज, चंपतरायोऽवदन्न यवनैस्तस्या जीवनलता शोषिता । किं तु यत्समभवन् न तत् कथयितुं शक्त इति ।

सभाकरणः–न शक्तः शपथेन बद्धत्वादिति स उक्तवान् ।

हिरादेवी–कः शपथ एषः ?

सभाकरणः–नाहं जाने ।

हिरादेवी–दृष्टा ननु त्वया तव भगिनी विरूपा नदीप्रवाहे ?

सभाकरणः–त्वयैवं कथितं श्रुतमासीन्मया ।

हिरादेवी–तत्र चंपतराय एव —

चंपतरायः-(सहसा प्रविश्य) - आगतोऽहं देवि । (न सा वदतीति दृष्ट्वा) केन हेतुना निमन्त्रितः ? नमस्ते सागरराज !

(हिरादेव्याः संभ्रममुभौ वीक्षेते)

हिरादेवी–(आत्मानं संयम्य साभिप्रायं) अस्ति कोऽपि हेतुविशेषः ।

चंपतरायः–विस्मयावहमिदं ननु । न प्रायोऽस्मच्चिन्तनमभीप्सितं वा समानम् । सर्वथा विरुद्धपक्षीयं मां भवती मन्यते । तन्न जाने किं मयाऽत्र कर्तव्यमिति ।

हिरादेवी–एष सागरराजस्तस्य भगिनीविषयकं वृत्तान्तं ज्ञातुमुत्कण्ठितः, भवांश्च स्वविदितं न कथयितुं पारयतीति —

चंपतरायः–किं ज्ञातुमीहतेऽसौ ?

हिरादेवी–कथं ललितादेवी भगिन्यस्य मृत्योरधीनाऽभवदिति ।

चंपतरायः–नैव सा मृत्योरधीनाऽभवत् कदापि । मम मतमित्येव ।

सभाकरणः–कुत्रास्ते तर्हि साऽधुना ?

चंपतरायः–नाहं जाने न वाऽस्मिन् विषये किंचिदपि वक्तुं प्रभुरहं सागरराज ।

सभाकरणः–(चंपतरायं सहसा खड्गेन प्रहृत्य) इदमेव तस्य निष्करणम् ।

चंपतरायः–(खड्गमुद्धरन् निपतंश्च) हा हतोऽस्मि । विश्वासघातेन निहतः ।

[हिरादेवी क्रूरहृष्टदृहृदा तं पश्यति ।]

दलपतिः–(ससंभ्रमं प्रविश्य) किमिदं तात ?

हिरादेवी–घातितश्चंपतरायस्तव पित्रा ।

दलपतिः–(खड्गं निष्कास्य) किमिदं पापकर्म तात । का वाऽस्य निष्कृतिः ?

सभाकरणः–मम भगिन्यनेनावधीरितेति श्रूयते । ललिता–
(नेपथ्ये) ओम् भवति भिक्षां देहि ।

हिरादेवी–केयं भिक्षार्थिन्यस्मिन् समये । निष्कास्यतामेषा ।

[निष्क्रान्ता]

चंपतरायः–आः । नृशंस, यदि रणे संमुखोऽभविष्यस्त्वं न तर्हि मरणाद् दुःखितोऽहमभविष्यम् । किमर्थमसौ विश्वासघातः ?

सभाकरणः–यथा मे भगिनी विश्वासघातेनैव भवता —

ललिता–(सहसा प्रविश्य) कस्यैष आक्रोशः ? को निपतितोऽत्र ? (विलोक्य) चंपतरायः ?

चंपतरायः—आम्, ललिते !

ललिता–हा रे दुर्दैव । यं द्रष्टुमियता कालेनाहमत्रागता तस्येयं दुरवस्था । मन्दभागिनी शाश्वता खल्वहम् । (रोदिति)

सभाकरण–ललिता ? कथमत्र भवती ? जीवसि त्वं ललिते ? (साशङ्कं पश्यति)

ललिता–जीवामि भ्रातर् । मन्दभागिनी भगिनी तेऽहं जीवाम्यद्यापि ।

चंपतरायः–(कष्टं) ललिते, तवैव कृते मरणमिदमिति धन्योऽस्मि मरणेऽपि ।

ललिता—मम कृते ?

दलपतिः—भवती चंपतरायेनाधिक्षिप्ताऽवमता चेति श्रुत्वा तातेन स प्रहृतः । सागरेशसुतोऽहं वन्दे ।

ललिता–न कदाप्यवधीरिता महाभागेनानेनाहम् ।

चंपतरायः—कुत्रासीर्ललितेऽन्तर्हिता ?

ललिता—हिरादेव्याः पतिना यदाचरितं न तदन्यः कोऽपि जानीते । जानाति तु हिरादेवी । तत एव प्रियं चंपतरायमप्युत्सृज्य प्रव्रजिताऽहम् । मा स्वकीयेषु कलहोऽभून्मत्कृत इत्यासीन्मे मनीषा । हर ! हर !

चंपतरायः–तेन कलहेनैवान्तेऽहं निहतः ।

छत्रसालः–(सहसा प्रविश्य) कुत्र मे तातः । (दृष्ट्वा) तात किमिदम् ।

चंपतरायः–वत्स, परलोकयात्रिकोऽहमधुना । किं तु नैष शोकसमयः । बुन्देलानां स्वातन्त्र्यरक्षणार्थे त्वया शपथेन यतितव्यम् ।

छत्रसालः–प्रतिश्रुतं प्रतिज्ञातं चैतत्तात । (सबाष्पं) कथमकाल एव निर्गच्छसि ? (सक्रोधं) इमं सागरराजं निहत्य प्रथममनृणी भविष्यामि ।

चंपतरायः–बुन्देलानां साहाय्यार्थे दक्षिणस्यां दिशि महापुरुषः शिवरायोऽव-

तीर्णस्तं मित्रत्वेन नित्रधान, तं द्रष्टुं सत्वरं गच्छ । तत एव तव सुरक्षास्माद् गृहकलहात् । माऽत्र तिष्ठ । न च सागरराजेन सह योधने महार्हं समयँ यापय । (साक्रन्दं) हन्त ! उत्क्रामन्ति पञ्च प्राणाः ।

(म्रियति)

सभाकरणः—तद् व्यर्थं मया बुन्देलवैरं प्रतिज्ञातं व्यर्थं च निहतोऽसौ बुन्देलखण्डत्राता महावीरः । तत्प्रथमं हिरादेवीशासनमेव समुंचितम् । तयाऽनृतनिवेदनेन मया कारितमिदं दुष्कर्म ।

(नेपथ्ये कोलाहलः।)

छत्रसालः—कोऽसौ कोलाहलः ?

(नेपथ्ये-हिरादेव्या प्राणार्पणं कृतं स्वहस्तेन सभाकरणभीत्या।)

सभाकरणः—कि करवाणि ? नेतो मे पापमयं जीवनं शेषितव्यँ । जयतु देवी विन्ध्यवासिनी ।

(खड्गेनात्मघाते प्रयतमानस्य हस्तं छत्रसालो नियम्यति।)

छत्रसालः—मैवम् , अद्यापि भवानस्मत्साहाय्यं नेतृत्वं च कर्तुमर्हति । नात्मनाशे—(नेपथ्ये कोलाहलः।)

विजया—(सहसा प्रविश्य) शत्रुसैन्यमागतं कुमार । यवनसेनापतिः स्ववचनं विस्मृत्याभियाति ।

छत्रसालः—तर्हि प्रथमं सर्वैः शत्रुहनने यतितव्यम् । आगम्यताम् ।

(विजयावर्जं सर्वे निष्क्रान्ताः । हर हर महादेव इति रणघोषो नेपथ्ये श्रूयते ।)

विजया—(देवीं प्रणम्य) देवि,

जयतु महिमा । जागृतदेवि ।।
स्वतन्त्रतादुरितं त्वया विना
न हि निवारयेत् प्रभुः कोऽपि ना
विलंबोऽधुना भवतान्मा ।। ८।।

(निष्क्रान्ता)

इति द्वितीयोऽङ्कः ।

समाप्तं स्वातन्त्र्यमणि-नाटकम् ।

स्वातन्त्र्यमणि-अन्तर्गत-पद्यानि ।

१. विन्ध्यवासिनी	—	भूप, त्रिताल
२. दुर्जनान्तःपुरे	—	दुर्गा, झपताल
३. बध्नातु सदा	—	भीमपलासी, केरवा
४. शूराभिलषणं	—	तिलंग, तीनताल
५. छत्रसालचरितवृता	—	देस, दादरा
६. स्वातन्त्र्यसुषमा	—	हमीर, तीनताल
७. महिषासुरमर्दिनी	—	पटदीप, त्रिताल
८. नाकलिता लीला	—	मालकंस, तीनताल
९. जयतु महिमा	—	भैरवी, त्रिताल

स्वातन्त्र्य-चिन्ता

(नान्दी)

१ मांगल्य की देवी, स्वतन्त्रते ! बहुत काल से तेरी पदधूलि यहाँ विराजमान हो रही है ।

२ तेरे मंदिर में नम्र व्यक्ति ही जा सकते हैं। तेरी कृपा हर नम्र व्यक्ति पर वर्धमान होती है ।

३ कारावास में कोई सुख से शयन नहीं कर सकता है। हरि (कृष्ण) विना क्या राधा रमती हैं ?

४ देवी लोकसत्ते ! जनता ने तेरा आदर किया है। जनता के विना तू क्या उदित हो सकती है ?

(वन में से आवाज आ रही है)

५ जो अमर सिंह की वाग्दत्त वधू है, जो बीकानेर नरेश की भगिनी है, सदय है वह यमुना राणा प्रताप द्वारा रक्षित अरवली वन में मधुर गुंजन करती प्रविष्ट होती है।

यह प्रस्तावना !

(तभी प्रताप सिंह के शिविर समीप अरवली वन में स्वैर विहार करती यमुना प्रवेश करती है ।)

यमुना

(गाती है)

६ स्वातन्त्र्य पताका विजयिनी होती है, जैसे चिरंजीव मधुर चांदनी ।

७ रसहीन दास्य में वह नवरसाल है। इस संसार के रंगमंच पर वह उत्तम संगीतिका है।

८ भव जलधि में आंदोलती हुई वह नौका है। विषय से भरे हुए तिमिर में ध्येय की दीपिका है ।

९ पूर्व दिशा के पर्वत पर वह किरण की शलाका है । बालरवि द्वारा निर्मित सौभाग्य की सुन्दर रेखा है।

अमरसिंह

(अज्ञात प्रवेशकर उसके नेत्र ढांक कर)

१० रमणी ! तू कौन है ? कहाँ से आई हैं ? मेरा ध्यान कर। मैं ही तेरा रक्षणकर्त्ता हूं।

११ षडऋतु के चक्र से काल क्रीडा कर रहा है। तब तेरी यह स्वतंत्रता की गाथा क्यों ?

१२ कमलिनी को देखकर रसिक भ्रमर गुँजनरूपी साम (वेद गीत) से हृदय का गान कर रहा है।

यमुना

(उसी स्वर में प्रेम से)

१३ जैसे पतंगा (कीटक) अपने तन का हवन करता है, संभवतः तेरी कथा भी वैसी ही होगी।

१४ स्वतन्त्रता का मार्ग प्रज्ज्वलित हुआ है। तेरा प्रतापवंत पिता यह व्रताचरण कर रहा है।

१५ कमलिनी सायं म्लान होती है। लेकिन स्वातन्त्र्य की शोभा सदा विकसित ही रहती है।

अमरसिंह

१६ गहन अरण्य में मृगया से उपजीविका होती है। वन में रहनेवालों को दास्य कैसा होगा ?

१७ मोहक यमुने, स्नेह से हम दोनों सहचर हों। इस दुर्गम प्रदेश में, हमारी स्वतन्त्रता ही रहेगी।

(घोड़े की पद ध्वनि आती है)

१८ अपने घोड़े को वेग से चला कर शस्त्र हिलाता हुआ यह कौन वीर आ रहा है ?

अमरसिंह

यह चन्द्रावत कृष्ण नाम से ज्ञात हुआ, मेरे पिता राणा प्रताप सिंह का पुराना मित्र है।

[चन्द्रावत कृष्ण प्रवेश करता है।]

चन्द्रावत कृष्ण

१९ राजपुत्र ! मैं चन्द्रावत विनीत भाव से अभिवादन करता हूं।

अमरसिंह

श्रेष्ठिन, तेरा यहां जल्दी से आगमन किस हेतु हुआ है ?

चन्द्रावत कृष्ण

२० "महाव्रती राणा प्रताप का आतिथ्य मैं स्वीकार करूंगा।"
ऐसा घोषित कर शत्रु का मंत्री, महा कुलांगार, राजा मानसिंह समीप आ रहा है।

एवं

२१ उसका आगमन और महान सेना देखकर मुझे अकारण पीड़ा होने की शंका उत्पन्न हुई। अतः घोड़े पर सवारी कर अविलंब यहाँ आया हूं। अब आप जैसा कहें !

अमरसिंह

२२ यह वार्ता पिता जी तक शीघ्र पहुंचाओ एवं सेवकों को आदरातिथ्य सिद्ध करने की आज्ञा दो।

चन्द्रावत कृष्ण

२३ आपका वचन स्वीकार है। सदैव आपकी कृपा हो, कलह का नाश हो, सज्जनों का सहवास सुखकर हो। (जाता है)

अमरसिंह

ऐसा ही हो।

२४ यह कैसी वार्ता है ? जैसे कि पापियों की कृपा भी शाप से लिप्त होती है। हमने बुलाया नहीं, प्रार्थना की नही, तब भी शत्रु शिविर से यह अग्नि उठी है। वह इस वन का दाह करेगी। मति कुण्ठित हुई है।

यमुना

ऐसा न कहिये।

२५ अतिथि पूजन राजपूत वंश में जनन होने वालों के कुलधर्म की संपत्ति है।

२६ सूर्य, मित्र या शत्रु का भेद किरण फेकने में नहीं करता है। आप की बुद्धि भी आज ऐसा प्रमाद न करे।

२७ बुद्धिमान पिता राणा प्रताप जी हमारे प्रमुख अलंकरण हैं। कुल की कीर्ति अनंत काल तक धवल ही रहे।

[घोड़े की पद ध्वनी आती है]

(मानसिंह प्रवेश करता है)

अमरसिंह

(आगे बढ़कर)

२८ राजन्-कमलमीर वन के आश्रय में, मैं आपका स्वागत करता हूं। राणा प्रताप का पुत्र आपका अभिवादन करता है।

(सेवकों से साथ चन्द्रावत कृष्ण खाद्य पेय लेकर प्रवेश करता है)

२९ राजन्, यथा शक्ति हम आपका स्वागत (आपकी पूजा) करते हैं। स्वीकार कीजिये। यहां वन में राजवाड़ा नहीं हैं। कोई विलास नहीं है।

चन्द्रावत कृष्ण

३० कंद मूल फल तथा उञ्छ (गिरे हुए धान्य) से बने पकवान लाया हूं। इनका सेवन कर श्रमों का परिहार कीजिए।

अमरसिंह

३१ मेरा मनीषित ही चन्द्रावत ने कहा है। वृत्तियों का संकोच मत कीजिये। स्वेच्छानुसार कुछ भी कीजिए।

मानसिंह

३२ इस स्वागत से मैं सन्तुष्ट हूं। राजभोग एवं उत्सव की मेरी अपेक्षा नही। मुझे राजसिंह (राणा प्रताप) से मिलने की आशा थी। कहां है वह उच्च मेवाड़राज (राणा प्रताप) ?

चन्द्रावत कृष्ण

३३ यहां आने में राणा असमर्थ है। उनका चित्त स्वस्थ नहीं है। लेकिन मेवाड़नाथ मेरे मुंह से आप के क्षेम समाचार हृदय से पूंछते हैं।

मानसिंह

(उपहास से)

३४ उदयपुर छोड़ने से क्या उन्होंने नीति भी छोड़ दी।

(क्रोध से)

प्रमुख अतिथि को यह सम्मान।

(तर्क करके)

राजा की वृत्ति ठीक हो, तभी प्रजा का वर्त्तन ठीक रहता है। विभव के साथ साथ, राजा का शील ही नष्ट हो गया !

(प्रतापसिंह)

(एकाएक प्रवेश कर)

३५ मेरा शील क्यों नष्ट हो गया -- वैभव छोड़कर अग्नि की ज्वाला के समान, मैंने स्वतन्त्रता की लालसा जागृति से सुरक्षित रखी है ?

३६ मेरा शील कैसे नष्ट हुआ – मेवाड़ को सुख देने की इच्छा से, दिल्लीपति के दरवार की शरण में नहीं गया हूं ?

३७ मेरा शील कैसे नष्ट हुआ — ऐहिक उन्नति की इच्छा से मैंने यवन रिपुओं के साथ दासता स्वीकार नही की ?

३८ मेरा शील क्यों नष्ट हुआ -- अद्यापि स्वतन्त्रता मेरी सहायता कर रही है और अभी तक खंडित नही हुई है !

३९ शील उनका प्रनष्ट हुआ होगा जिन्होंने पेट भरने के लिए सत्ताधीश राजा का दास्य स्वीकार कर लिया है।

४० शील उनका प्रनष्ट हुआ होगा जिनकी कुल जात कन्यायें यवन हो गई हैं एवं जिनके कुलधर्म का विनाश हो गया है।

४१ उनका शील प्रनष्ट हो गया है, जिन्होंने स्वतन्त्रता को मान नहीं दिया तथा जिनकी जीवनयात्रा दासत्व से सुखमय हो रही है।

४२ मित्र के समान बोलते हुए राजा मान सिंह ! मेरा शील नष्ट नहीं हुआ। जब तक असिलता (तलवार) तलपती है, तब तक शील नष्ट होने की शंका हो।

४३ दास्य के पंक से भरी तेरी जिव्हा शील का उच्चार न करे। उत्तम शील क्या हैं, यह तुम जानते ही नहीं। वृथा बकवास करने से क्या लाभ।

४४ जिन नराधमों ने राजपूत कुलों का विध्वंस साध्य किया है, उनके शील की तपास करो, मेरा नहीं, राजन् ! मेरा नहीं !! मेरा नहीं !!!

मानसिंह

(खेद से)

४५ मेरे अपमान से मुझे दुःख नहीं है, राजन्। क्योंकि राजा का धर्म आपको विदित ही नहीं है। जहां प्रजा सुख से निवास करती है, वह सुराज्य है, अन्यथा नहीं।

प्रतापसिंह

(स्वाभिमान)

४६ प्रजा का स्वराज्य का अधिकार नित्य हैं। कदाचित सुराज्य हो या न हो। स्वराज्य में प्रजा को सुराज्य की योजना करना है। लेकिन स्वराज्य की तृष्णा सुराज्य से शान्त नहीं होती।

यमुना

४७ निजी अधिकारों (हक्क) में कायम दीक्षा अवश्य ही होना हैं। स्वराज्य के मन्त्र की उपेक्षा न हो।
यह नागरिकों की सत्वपरीक्षा हैं। शत्रु सैंन्य की प्रतीक्षा नित्य हो रही है। यहाँ व्यक्ति हित की अपेक्षा नहीं हैं।

मानसिंह

४८ राजबाले, इस विषय में तुम धृष्टता एवं वृथा कष्ट मत करो। मेरे बाल अब सफेद हो गये हैं, जबकि तुझे जीवन प्रवाह की धारा अभी विदित नहीं हुई है।

अमरसिंह

ऐसा क्यों ?—

४९ राजपूत बाला अग्नि की कली है। आच्छादित होकर भी वह अग्नि की ज्वाला है।
वह राज्य कार्य नहीं जानती होगी। लेकिन शत्रु ने भी उसकी निन्दा नहीं की ! दास्य की चिकित्सा उसने नहीं की। वह तो सुकुमार माला भी हैं।

मानसिंह

५० वत्स अमरसिंह, आपके वचन विचार करने योग्य नहीं है। आपने रणभूमि देखी नहीं हैं। तारुण्य से आप प्रणय की बात बोल रहे हैं।

अमरसिंह

५१ तब सुनिए —

जब तक मेवाड़ के रिपुभय का विनाश नहीं हुआ, जब तक उदयपुर के प्रासाद में हमारा निवास नहीं होगा, जब तक यवन को जीत कर पिताजी पृथ्वीपति नहीं हुए, तब तक मुझे जगत में प्रणय के सौख्य की इच्छा नहीं।

प्रतापसिंह

हर! हर! महादेव!!

५२ हे अंबरनाथ, अब रणाँगन में मिलेंगे – सामने वाले पक्ष में से। तब तक रजा लेता हूँ। रण के यज्ञ कुण्ड में धैर्य का अभाव मत बताइये। (जाता है)

मानसिंह

५३ प्रताप दुर्दमनीय हैं। शत्रु भी उसका प्रताप सहन नही कर सकता। उसके प्रताप से सभी दिशाओं में प्रतापायन कथा हो रही है। उसके प्रताप से हर एक हृदय में प्रताप का कवन उठ रहा है। उसे प्रताप यज्ञ में कीर्ति मिल रही है। लेकिन प्रताप तुमने यश विनाश किया हैं। (जाता हैं)

५४ चन्द्रावत कृष्ण

मनुष्य प्रतापी होने पर भी दैव का दुर्विलास नहीं जानता है। स्वभाव दुरतिक्रम है। जो होना है, वह होगा ही।

(जाता है)

अमरसिंह

५५ यमुने, तेरा मिलन स्वराज्य गँगा में ही पावन होगा। तेरे बिना मेरा जीवन, जीवन नहीं हैं। लेकिन आज युद्ध में जाना है, तेरे विवाह के लिए नही। प्रिये, यह तेरी अवहेलना नहीं हैं।

यमुना

५६ मातृभूमि को दुखी देख कर सिंह समान सूर पुत्रों को स्वीय गुफा छोड़ कर अवश्यमेव बाहिर आना है तथा सूर ललना को विजयश्री के वन्दन की प्रतीक्षा करना ही उचित है।

भरत वाक्य

५७ यह अमरसिंह तथा यमुना का आख्यान श्री राम कें वचन सुधा से मोहक हुआ हैं। यह भारत को प्रोत्साहित करे।

सुरभारती प्रकाशन

१. जवाहरचिन्तनं

लें० श्री. भि. वेलणकर

मूल्य रु. ७

भारत तथा समस्त जगत को हितकर विचार स्व. पंडितजी ने स्वजीवन में प्रकट किये थे। उन्हीं का संकलन संस्कृत सुगम पद्यों में कवि ने इस ग्रन्थ में किया है। इसमें अमर विचार धारा है, मधुर संगीत है एवं सरल संस्कृत है। ऐसा त्रिवेणी संगम वाङ्मय में विरल होता है। बहुत तज्ज्ञों ने इसकी स्तुति की है।

Dr. S. Radhakrishnan Ex-President in his foreword to the book says—Sri S.B. Velankar has written in Sanskrit Verse a book on Nehru...This book of Sri Velankar demonstrates that Sanskrit is a living language and can express even the most modern ideas. Sri Velankar has used his linguistic equipment to good purpose and deserves our congratulations.

Dr. C. D. Deshmukh the well-known Sanskritist and ex-finance Minister, India writes in his introduction :

"ईदृक्षकक्षासमावेशार्हः (निर्माणचातुर्यं,, गद्यपद्यादिहृद्यानवद्यसारं इ०) प्रस्तुतो ग्रन्थः श्री-श्री-भि-इति संक्षिप्ताभिधानधारिभिः वेलणकर-महोदयैः प्रणीतो 'जवाहर-चिंतन' संज्ञः। कतिपयगुणविशेषवशाद् अर्हति चायं विदुषां धिषणाकर्षणं सावधानपठनं च। तत्रापि समावेशितवस्तुना गेयसंगीतरूपेण पुरः स्थापितवता लेखकेन खलु शिखरं समासादितं लेखनैश्वर्यस्य। तं एनं एवंविधमभिनवलक्षणभव्यं ग्रन्थं मुक्तकण्ठं प्रशस्य श्रोतृवृन्दस्य समक्षः पुरस्करोमि।

Dr. Suniti Kumar Chatterjee –National Professor of India writes :—It was a good thought to enshrine the ideas of Jawaharlal Nehru in Sanskrit verse. Shri Velankar has a facile pen in composing Sanskrit poems which with their regular rhyme are quite suitable for singing.

२. विरहलहरी

ले० श्री० भि० वेलणकर

मूल्य रु० २

This book contains 25 sanskrit lyrics broadcast by All India Radio.

संगीत चूड़ामणि पंडित विनायकरावजी पटवर्धन लिखते हैं–पोस्ट मास्टर जनरल एस. बी. वेलणकर जी ने विरहलहरी नाम की पुस्तक लिखी है साथ साथ पदों का स्वरलेखन भी दिया है। मेरे ख्याल से स्वर लिपि सहित लिखी हुई संस्कृत पद्यों की यही पहली पुस्तक होगी ।...श्रीमान वेलणकर जी ऐसी सुन्दर और मनोहारी काव्य रचना भविष्य में भी करेंगे...ऐसी आशा मैं करता हूं।

Dr. M. P. Sharma Vice-chancellor Sagar University writes :

The easy, sweet and musical language and style of the lyrics remind one of Jayadeva's Geeta Govind.

३. मेघदूतोत्तरं

ले. श्री भि. वेलणकर

मूल्य रु. २.५०

इस ग्रन्थ में मेघदूत के यक्ष की पूरी कहानी संगीत नाट्य रूप में कही गयी है। मेघ के कालिदास प्रणीत मार्ग पर एक अति सुन्दर टिप्पणी है. अंग्रेजी तथा हिंदी अनुवाद भी साथ मुद्रित है.

श्री धर्मपाल सिंह गुप्ता शिक्षा मन्त्री मध्यप्रदेश– आपके द्वारा रचित गीतनाट्य 'मेघदूतोत्तरं' भाषा एवं सामग्री दोनों दृष्टी से प्रशंसनीय है।

Justice P. V. Dixit writes : I think that you should publish it in a book form also. May I suggest that English or Hindi Version of मेघदूतोत्तरं as also the songs should be included in the intended publication ?

Dr. Karandikar of Delhi University writes : It is a welcome addition to Sanskrit poetry in a new way.



वेलणकर-वाङ्मय

(अप्रकाशित)

संस्कृत

यां चिन्तयामि
अहोरात्रं
गीर्वाणसुधा
मराठी-काव्य-दर्शनं
जन्म रामायणस्य
नागार्जुनीयं

मराठी

पैठणचा नाथ
जनतेचे दास जसे
कला लहरी निमाली
बोलति बहु बाहुलीं
विद्येचें हें पावन मंदिर

English

Contract Bridge
Indian Womanhood

३१-३-१९६९



b. 22.6.1915

Among the modern generation, Shri Velankar stands unique in his contribution to Sanskrit, particularly outside the academic field. His efforts are not academic but for the common citizen of this democracy. His themes range from mythology, history and folklore to modern thought but the motif is unswerving. Here he brings out two pieces from history to life, kindling the interest of the Youngsters. As usual they are blended with music and modern needs.

सु र भा र ती
भोपाल